जैन धर्म का शाश्वत स्वरूप

आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज

'वत्थुसहावो धम्मो' अर्थात्—वस्तु के स्वभाव को धर्म कहते हैं। जिस तरह जल का स्वभाव शीतल है। जल चाहे आकाश से गिरा हो, कुएं या बावड़ी से निकाला हो, किसी झील, नदी या समुद्र से लिया जाय, शीतल ही होगा। हाँ, कुछ स्रोतों से गर्म जल भी आता है परन्तु वह स्वाभाविक नहीं होता। इस पृथ्वी में अनेक स्थानों पर दहनशील अग्निमय पदार्थ भी पाये जाते हैं। अनेक पर्वत ऐसे होते हैं जिनसे अग्निज्वाला निकलती रहती है। पृथ्वी के भीतर कहीं पर गन्धक की खानें होती हैं। किसी जल के सोते के नीचे पृथ्वी में यदि ऐसी कोई अग्निमय पदार्थ की खान हो तो वह उस जल को उष्ण करती रहती है। इस कारण उन सोतों में पानी गर्म ही निकला करता है, जैसे कि राजगृही के कई कुण्डों में निकलता है। परन्तु सोते का वह गर्म जल भी थोड़ी देर पीछे स्वयं ठण्डा होकर अपने स्वभाव में आ जाता है। इस कारण जल का धर्म या स्वभाव शीतल मानना पड़ता है।

आत्मा का स्वभाव आत्मा का धर्म कहलाता है। आत्मा ज्ञान, दर्शन, क्षमा, धैर्य आदि अनन्त गुणों का अखंड पिण्ड है। यद्यपि संसारी जीवों का आत्मा कर्मों के कारण पराधीन बना हुआ है, उसके स्वाभाविक गुण विकृत हो गये हैं, उसके गुणों में से अनेक गुण अविकसित हैं, अनेक विकृत हो गये हैं, किन्तु फिर भी उनकी स्वाभाविक झलक सर्वथा नहीं छिप सकती। जिस तरह सूर्य पर चाहे जितने बादल आ जाएँ परन्तु उसके द्वारा जगत् में होने वाला प्रकाश तो हो ही जाता है, जैसे कि वर्षा के दिनों मे होता है। ज्ञानावरण कर्म के द्वारा संसारी आत्मा का ज्ञान बहुत कम हो गया है। परन्तु ऐसा नहीं है कि वह सर्वथा अस्त हो गया हो, कुछ न कुछ ज्ञान प्रत्येक जीव में पाया ही जाता है। निगोदिया जीव में सबसे कम ज्ञान होता है। वह अक्षर ज्ञान के अनन्तवें भाग होता है। अर्थात् ज्ञान आत्मा का स्वाभाविक गुण है। अतः वह आत्मा में अवश्य सदा रहता है।

क्षमा आत्मा का स्वाभाविक गुण है। क्रोध स्वाभाविक गुण नहीं है। इसी कारण क्रोध थोड़ी देर ठहरता है। उतनी ही देर में क्रोध से आत्मा व्याकुल हो जाता है। क्षमा आत्मा में सदा बनी रहे तो भी आत्मा को कोई कष्ट नहीं होता। इसी प्रकार आत्मा के और भी स्वाभाविक गुण हैं। वे स्वाभाविक गुण जिस मार्ग पर चलने से प्रगट हो जाते हैं उसी का नाम धर्म है। कर्मों के कारण आत्मा के गुण विकृत या अल्प विकसित हो रहे हैं, जिससे कि आत्मा को संसार में जन्म-मरण, भूख-प्यास, रोग, बुढ़ापा, खेद, शोक आदि अनेक तरह के शारीरिक, मानसिक कष्ट मिल रहे हैं। आत्मा दुर्गतियों में चक्कर लगा रहा है। आत्मा जिस मार्ग पर चलने से इन कष्टों से बिल्कुल छूट जावे उसका नाम धर्म है। श्री समन्तभद्र आचार्य ने 'रत्नकरण्डश्रावकाचार' में कहा है—

देशयामि समीचीनं धर्मकर्मनिर्बहणम्।
संसारदुःखतः सत्त्वान्यो धरत्युत्तमे सुखे॥

अर्थात् धर्म कर्म-जाल को नष्ट करके तथा संसार-दुःख से छुड़ाकर उत्तम सुख में पहुँचाने वाला होता है, ऐसे धर्म को मैं बताता हूं।

श्री समन्तभद्र ने 'रत्नकरण्ड श्रावकाचार' में जिस धर्म की रूपरेखा बतलाने का संकेत किया है वह धर्म **जैनधर्म** के नाम से विख्यात है, जो कि संसार का सबसे प्राचीन धर्म है क्योंकि प्रचलित अवसर्पिणी युग में सबसे प्रथम इसी धर्म का उदय हुआ था। इसका संक्षिप्त इतिहास यों है—

आज से करोड़ों वर्ष पहले अयोध्या के शासक राजा नाभिराय की रानी मरुदेवी के उदर से परम तेजस्वी पुत्र ऋषभनाथ का जन्म हुआ था। ऋषभनाथ जन्म से ही अवधिज्ञानी थे। जब वे बड़े हुए तो उन्होंने अपने एक सौ पुत्रों को तथा जनता को खेती-बाड़ी, युद्ध,

'अमृत-खंड' के अन्तर्गत विभिन्न चातुर्मासों में आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज द्वारा दिये गए प्रवचनों का सार-संक्षेप डॉ० महेन्द्र 'निर्दोष' द्वारा संकलित-संपादित किया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजनीति, वस्त्र बुनना, नाट्यकला, चित्रकला आदि अनेक कलाएं सिखलाईं। अपनी बड़ी पुत्री ब्राह्मी को अक्षर-विद्या और छोटी पुत्री सुन्दरी को अंकविद्या सिखलाई। इस तरह गृहस्थ दशा में उन्होंने लौकिक विद्याओं की शिक्षा सर्वसाधारण को दी। फिर जब वे संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर योगी बने तब एक हजार वर्ष तक अनेक कठिन तपस्याएं करने के बाद वे सर्वज्ञ वीतराग जीवन्मुक्त परमात्मा बन गये। राग, द्वेष, क्रोध, मद, मोह, माया, काम आदि विकारों को आत्मा से दूर कर दिया तथा आत्मगुण-घातक ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय इन चारों कर्मों पर विजय प्राप्त कर ली। उक्त दुर्भावों और कर्मों को जीत लेने के कारण भगवान् ऋषभनाथ का उपाधिनाम 'जिन' (जयति इति जिनः यानी जीतने वाला) प्रसिद्ध हो गया।

उस जीवन्मुक्त 'जिन' अवस्था में उन्होंने विशाल समवशरण नामक व्याख्यान-सभा द्वारा समस्त सुर, नर, पशु, पक्षी आदि जीवों को कर्मों तथा दुर्भावों से आत्मा को शुद्ध करने वाला अनुभूत मार्ग (धर्म) का उपदेश दिया, जिसका आचरण करके अनेक मनुष्यों ने दीक्षा लेकर परमात्मा पद को प्राप्त किया। जो मुनि न बन सकते थे उनके लिये गृहस्थ अवस्था में रहते हुए उससे नीची श्रेणी सुगम आचरण बतलाया। इस कारण उनके द्वारा उपदिष्ट धर्म का नाम उनके प्रसिद्ध नाम 'जिन' के अनुसार 'जैनधर्म' विख्यात हुआ।

इस तरह भगवान् ऋषभनाथ लौकिक कलाओं के सबसे प्रथम शिक्षक हुए और सबसे पहले वे योगी बने तथा अपने योग में पूर्ण सफल होकर इस युग की अपेक्षा सबसे प्रथम धर्म-प्रचारक आद्य तीर्थंकर हुए। आत्मा को महात्मा, तदनन्तर परमात्मा बनाने की विधि बतलाई। इस प्रकार जैनधर्म का उदय जगत् में अन्य सब धर्मों से पहले हुआ है। इस कारण संसार का सबसे प्राचीन धर्म जैनधर्म है।

आत्मा को पूर्ण शुद्ध करके परमात्मा बनाने का विधान केवल जैनधर्म ने बतलाया है। अन्य धर्मों में परमात्मा केवल एक व्यक्ति को माना है, उनके सिद्धान्त के अनुसार परमात्मा अन्य कोई नहीं बन सकता वह चाहे जितनी भी तपस्या क्यों न करे। परन्तु जैनधर्म ने आत्मा का सामान्य स्वरूप बतलाकर संसारी आत्मा को विशेष रूप से खुलासा करके बतलाया कि आत्मा संसार में कर्मबन्धन के कारण अशुद्ध, विकृत, परतन्त्र होकर विविध योनियों में जन्म-मरण करता हुआ घूमता-फिरता है। किस तरह कर्मबन्धन बनता है? कितने उसके भेद हैं, वह जीव को फल किस तरह देता है, किस तरह वह कम होता है, किस तरह बढ़ता है, वह कर्म-बन्धन जीव के किस-किस गुण को क्या हानि पहुँचाता है, किस तरह उसका वेग हलका होता है, किस तरह कर्म छूटता है? इत्यादि कर्म-सिद्धान्त बड़े विस्तार के साथ जैन दर्शन में बतलाया गया है। उस सिद्धान्त के अनुसार जो व्यक्ति कर्म दूर करने की जितनी कोशिश करता है उतना ही शुद्ध उसका आत्मा होता है। घर-बार छोड़ साधु-दीक्षा लेकर जो अपना सारा समय आत्म-शुद्धि के लिये ध्यान-स्वाध्याय आदि में लगाते हैं; काम क्रोध आदि को बहुत कुछ शान्त कर देते हैं, वे आत्मा से महात्मा बन जाते हैं।

वे ही महात्मा आत्म-ध्यान करते-करते जब अपने कर्मों को निर्मूल नष्ट करके अपना आत्मा पूर्ण शुद्ध बना लेते हैं तब उनके समस्त आत्मगुण कर्म-आवरण हट जाने से पूर्ण विकसित हो जाते हैं। अतः वे सर्वज्ञ, द्रष्टा, पूर्ण सुखी, निरंजन, निर्विकार परमात्मा सदा के लिये बन जाते हैं। इस तरह आत्मा, महात्मा और परमात्मा आत्मा की ही तीन श्रेणियाँ हैं। अतः जितने भी आत्मा पूर्ण ज्ञानी, पूर्ण सुखी व निर्विकार बन चुके हैं वे सभी परमात्मा हैं। इस तरह आत्मा के पूर्ण विकास का स्पष्ट विवरण जैनधर्म के सिवाय अन्य किसी दर्शन ने नहीं बतलाया।

हिन्दुस्तान टाइम्स के सम्पादक, गांधी जी के सुपुत्र श्री देवदास गांधी जब इंगलैण्ड गये तो वहां के प्रसिद्ध विचारशील लेखक जार्ज बर्नार्ड शॉ से मिले। बातचीत करते हुए देवीदास गांधी ने बर्नार्ड शॉ से पूछा कि आपको सबसे अधिक प्रिय धर्म कौन-सा प्रतीत होता है? बर्नार्ड शॉ ने उत्तर दिया कि "**जैनधर्म**"। देवदासजी ने इसका कारण पूछा तो जार्ज बर्नार्ड शॉ ने उत्तर दिया कि—**जैनधर्म में आत्मा की पूर्ण उन्नति तथा पूर्ण विकास की प्रक्रिया बताई गई है**—इस कारण मुझे जैनधर्म सबसे अधिक प्रिय है।

जैनधर्म विश्वहितकारी धर्म है। संसार के प्रचलित धर्मों में किसी धर्म में तो केवल अपने धर्मानुयायियों की रक्षा करने का ही उपदेश है। जो नर नारी उस धर्म के अनुयायी न हों उनको अपना शत्रु समझ कर या तो उन्हें मार कर नष्ट करने का उपदेश दिया है या बलपूर्वक उन्हें अपना धर्म मनवाने की शिक्षा दी है। दूसरे धर्मानुयायियों के साथ कुछ कम या कुछ अधिक कठोर बर्ताव करने का उपदेश प्रायः सभी धर्मों (जैन धर्म के सिवाय) के ग्रन्थों में दिया गया है। किसी धर्म ने यदि दया भाव का क्षेत्र कुछ बढ़ाया है तो समस्त मनुष्यों की रक्षा करने का विधान उसने कर दिया है। किसी धर्म ने मनुष्य के सिवाय कुछ काम आने योग्य पशुओं की रक्षा करने का विधान कर दिया है। अपने परमात्मा देवी देवताओं का प्रसाद (प्रसन्नता) पाने के लिये अनेक धर्मों में गाय, बकरा, भैंसा, सुअर, मुर्गा, घोड़ा यहाँ तक कि मनुष्य को भी मार कर भेंट करने का उपदेश दिया है। सभी पशु-पक्षी, कीड़े-मकोड़े, आदि जीवों की रक्षा करने का विधान किसी भी धर्म में नहीं पाया जाता। यह प्राणी मात्र पर दया करने का उपदेश जैनधर्म में ही पाया जाता है। कोई भी प्राणी वह चाहे सर्प, सिंह, भेड़िया, बीछू आदि दुष्ट प्रकृति का हो अथवा कबूतर, खरगोश, हिरण आदि भोली प्रकृति का हो, हाथी, ऊँट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदि बड़े आकार का हो अथवा चींटी, मकोड़ा, मच्छर आदि छोटे आकार का हो, एकेन्द्रियधारी हो अथवा पंचेन्द्रिय हो, जलचर हो, थलचर हो या नभचर हो, समस्त जीवों की रक्षा करने का उपदेश जैन धर्म में दिया गया है। अतः **विश्व धर्म** कहलाने का अधिकार केवल जैन धर्म को ही है।

इसी 'अहिंसा परमो धर्मः' का सिद्धान्त महात्मा बुद्ध ने मान कर पशुयज्ञ का विरोध अवश्य किया परन्तु मांस-भक्षण को अपना कर प्रकारान्तर से हिंसा का अंश रहने दिया। आज विदेशी बौद्ध साधु मांस-भक्षण करते हैं। जैनधर्म ने अपने सबसे निम्न कोटि के अनुयायी को भी मांस का न खाना नियमित रक्खा। इस कारण संसार के जहाँ प्रायः सभी धर्मानुयायियों में मांस-भक्षण प्रचलित है वहाँ केवल जैन धर्मानुयायी ही मांस भक्षण से अछूते हैं।

इसके सिवाय खान-पान के विषय में जैनधर्म का सुनिश्चित सिद्धान्त है। कौन पदार्थ किस दशा में भक्ष्य (खाने योग्य) है और किस दशा में वह भक्ष्य नहीं है। पानी, दूध आदि पेय पदार्थों में से कौन-कौन पेय ग्राह्य हैं और कौन-कौन से अग्राह्य हैं? कौन से सर्वथा अभक्ष्य अपेय हैं और क्यों हैं? इसका सुनिश्चित वैज्ञानिक विवरण जैन धर्म के सिवाय अन्यत्र नहीं मिलता।

जीवों का वर्गीकरण जैन सिद्धान्त में जिस सुन्दर ढंग से किया गया है वैसा अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। कौन जीव किस श्रेणी का है, उसकी कितनी इन्द्रियाँ और कितने प्राण हैं? कितनी उसमें ज्ञान शक्ति है? इसका वैज्ञानिक उल्लेख जैन-सिद्धान्त में पाया जाता है। वृक्षों में जीव प्रायः किसी भी धर्म ने नहीं माना, यदि किसी ने माना है तो वह इस विषय में पूरा खुलासा नहीं दे सकता। परन्तु जैनधर्म इस विषय में बहुत अच्छा विज्ञान-सम्मत खुलासा बतलाता है। वनस्पतियों का वर्गीकरण बड़े अच्छे ढंग से जैन दर्शन ने किया है। उनकी ग्राह्यता, अग्राह्यता पर सुन्दर प्रकाश डाला है।

जैनधर्म का आचार शास्त्र बहुत सुन्दर है। उसके समस्त नियम श्रेणीवार सुनिश्चित हैं। उनमें कहीं भी कमी या बेशी करने की रंचमात्र भी आवश्यकता नहीं है। मनुष्य को उच्च ध्येय की सिद्धि के लिये अपने जीवन्मुक्त अर्हन्त भगवानों तथा तीर्थंकरों की प्रतिमाएं बनवा कर उनका विधिवत् सन्मान पूजन करना, दर्शन करना भी जैनसिद्धान्त ने ही सबसे प्रथम संसार के समक्ष रक्खा। मूर्ति मन्दिर, शिखरवेदी का निर्माण, उनकी प्रतिष्ठा आदि के निश्चित नियम जैनशास्त्रों में बताये गये हैं। बुद्धि को परिपक्व करने के लिये स्याद्वाद सिद्धान्त तो जैनधर्म का एक अनुपम महान् सिद्धान्त है। इस तरह जैनधर्म ने प्रत्येक दिशा में बहुत स्पष्ट दिग्दर्शन किया है।

जैन धर्म की प्राचीनता

जैन धर्म का उद्देश्य अर्थात् प्रयोजन संसारी आत्मा के पाप-पुण्य रूपी कर्ममैल को धोकर उसको संसार के जन्म-मरणादि दुःखों से मुक्त कर स्वाधीन परमानन्द में पहुंचा देना होता है, जिससे यह अशुद्ध आत्मा शुद्ध होकर परमात्म-पद में सदाकाल के लिए स्थिर हो जावे। यह मुख्य उद्देश्य है। और, गौण उद्देश्य क्षमा, ब्रह्मचर्य, परोपकार, अहिंसा आदि गुणों की प्राप्ति करना है।

यह जगत् अनादि है

जगत् कोई विशेष भिन्न पदार्थ नहीं है। चेतन और अचेतन वस्तुओं का समुदाय है, जैसे वृक्षों के समूह को वन, मनुष्यों के समूह को भीड़, हाथी-घोड़े-रथ-पयादों के समूह को सेना कहते हैं, वैसे ही यह जगत् या लोक पदार्थों के समुदाय का नाम है। यह बात आबाल-वृद्ध सभी जानते हैं कि जो वस्तु बनती है वह किसी वस्तु से बनती है, वह नाश होती है तो वह किसी अन्य वस्तु के रूप में परिवर्तित हो जाती है। अकस्मात् बिना किसी उपादान कारण के न कोई वस्तु बनती है, न नष्ट होकर वह सर्वथा अभाव रूप हो जाती है। दूध से घी, खोया, मलाई बनती है, मिट्टी चूना पत्थरों के मिलने से मकान बन जाता है, मकान को तोड़ने से मिट्टी, लकड़ी आदि पदार्थ अलग-अलग हो जाते हैं। यह सृष्टि का एक अटल और पक्का नियम है कि सत् का सर्वथा नाश और असत् का उत्पादन कभी नहीं हो सकता। अर्थात् जो मूल पदार्थ जड़ या चेतन हैं, उनका सर्वथा नाश नहीं होता है तथा जो मूल पदार्थ नहीं है वह कभी पैदा नहीं हो सकता। विज्ञान भी यही मत रखता है।

किसी वस्तु का नाश नहीं होता। यह जगत् परिवर्तनशील है। अर्थात् इसके भीतर जो चेतन और जड़ द्रव्य हैं वे सदा अवस्थाओं को बदलते रहते हैं। अवस्थायें जन्मती और बिगड़ती हैं, मूल द्रव्य नहीं। इसलिए यह लोक सदा से है और सदा चलता जाएगा तथा अकृत्रिम भी है क्योंकि जो वस्तु आदि-सहित होती है उसी के लिए कर्ता की आवश्यकता है, अनादि पदार्थ के लिए कर्ता नहीं हो सकता। यह जगत् स्वभाव से सिद्ध है। अर्थात् इसके सब पदार्थ अपने स्वभाव से काम करते रहते हैं।

प्रत्येक कार्य के लिये दो मुख्य कारण होते हैं—एक उपादान, दूसरा निमित्त। जो मूल कारण स्वयं कार्यरूप हो जाता है उसे उपादान कारण कहते हैं। उसके कार्य रूप होने में एक व अनेक जो सहायक होते हैं उनको निमित्त कारण कहते हैं। जैसे पानी से

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भाप का बनना। इसमें पानी उपादान, तथा अग्नि आदि निमित्त कारण हैं। जगत् में आग, पानी, हवा, मिट्टी एक दूसरे को बिना पुरुषार्थ के अपने-अपने परिणमनों के अनुसार निमित्त होकर बहुत से कार्यों और रूपों में बदल देते हैं। पानी बरसना, बहना, मिट्टी का बह जाना, कहीं जमकर पृथ्वी बनना, बादलों का बनना, सूर्य का प्रकाश, ताप फैलना, दिन-रात होना ये सब जड़ पदार्थों का विकास है। निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध चिन्तवन में नहीं आ सकता। न जाने कौन पदार्थ अपनी परिस्थिति के वश विकास करता हुआ किसके किस विकास का निमित्त हो रहा है। ऐसे असंख्य परिणाम प्रतिक्षण हो रहे हैं।

बहुत-से कामों में चेतन जीव भी निमित्त होते हैं। जैसे चिड़ियों से घोंसले का बनाना, आदमी से मकान बनाना आदि, तथा कहीं चेतन कार्यों में भी जड़ पदार्थ निमित्त बन जाता है, जैसे अज्ञानी होने में भांग या मद्य आदि। इस जगत् में सदा ही काम होता रहता है। ऐसा नहीं है कि वह कभी परमाणु रूप से दीर्घ काल तक पड़ा रहे और फिर बने। जहां जल और ताप का सम्बन्ध होगा वहां जल शुष्क हो भाप बना होगा। कहीं कभी कोई बस्ती हो जाती है, कभी-कभी ऊजड़ क्षेत्र बस्ती हो जाता है। सर्व जगत में कभी महा-प्रलय नहीं होती। किसी थोड़े-से क्षेत्र में पवनादि की तीव्रता से प्रलय की अवस्था कुछ काल के लिए होती है, फिर कहीं बस्ती बसने लगती है। यों सूक्ष्मता से देखा जाए तो सृष्टि और प्रलय सर्वदा होते रहते हैं। इस तरह यह जगत् अनादि होकर अनन्त काल तक चलता जाएगा।

जैन धर्म अनादि है

जैन धर्म इस जगत् में कहीं न कहीं सदा ही पाया जाता है। यह किसी विशेष काल में शुरू नहीं हुआ है। जम्बूद्वीप के विदेह क्षेत्र में (जिसका अभी वर्तमान भूगोलज्ञाताओं को पता नहीं लगा है) यह धर्म सदा जारी रहता है। वहां से महान् पुरुष सदा ही देह से रहित हो मुक्त होते हैं। इसी कारण उस क्षेत्र को विदेह कहते हैं। इस भारत क्षेत्र में भी यह धर्म प्रवाह की अपेक्षा अनादि काल से है। यद्यपि यह किसी काल में कुछ समय के लिए लुप्त हो जाता है, तो फिर तीर्थङ्करों या मोक्षगामी केवलज्ञानी महान् आत्माओं के द्वारा प्रकाश किया जाता है। जब यह धर्म आत्मा के शुद्ध करने का उपाय है तब जैसे आत्मा और अनात्मा अर्थात् चेतन और जड़ से भरा हुआ यह जगत् अनादि अनंत है, वैसे ही आत्मा की शुद्धि का उपाय यह धर्म भी अनादि अनंत है। जगत् में धान्य, धान्य की तुष रहित शुद्ध अवस्था चावल, तथा धान्य का शुद्ध होने का उपाय—ये तीनों ही अनादि हैं। इसी तरह संसार आत्मा, परमात्मा और परमात्म पद की प्राप्ति के उपाय भी अनादि हैं।

ऐतिहासिक दृष्टि से जैन धर्म की प्राचीनता

यह जैनधर्म अनादि काल से चला आ रहा है। हम यदि खोजे हुए इतिहास की ओर दृष्टि डालें तो पता चलेगा कि जहां भारत की ऐतिहासिक सामग्री मिलती है वहां तक जैनधर्म पाया जाता है। इस बात के प्रमाण यहां नमूने के रूप में एक दो ही दिए जाते हैं जिससे अधिक विस्तार न हो जावे।

मेजर जनरल फर्लांग साहब (Major General J. G. R. Furlong) अपनी पुस्तक The short studies of comparative religion p.p. "243-44" में कहते हैं—

All Upper, Western North & Central India was, then say, 1500 to 800 B. C. and indeed from unknown times, ruled by Turanians, conveniently, calld Dravids and given to tree, serpent and the like worship...... but there also existed throughout Upper India an ancient & highly organised religion, philosophical, ethical & a severely ascetical viz Jainism.

भावार्थ—ई० सन् ८०० से १५०० वर्ष पहिले तक तथा वास्तव में अज्ञात समयों से यह कुल भारत तूरानी या द्रविड़ लोगों द्वारा शासित था जो वृक्ष व सर्प आदि की पूजा करते थे किन्तु तब ही ऊपरी भारत में एक प्राचीन, उत्तम रीति से संगठित धर्मतत्त्व-ज्ञान से पूर्ण सदाचार रूप, तथा कठिन तपस्या सहित धर्म अर्थात् जैन धर्म मौजूद था।

इस पुस्तक में ग्रन्थकार ने जैनों के ऐसे भावों का पता अन्य देशों में प्राप्त भावों में पाया जैसे ग्रीक आदि में। उसी से इनका अस्तित्व बहुत पहिले से सिद्ध किया है। दुनिया के बहुत से धर्मों पर जैन धर्म का असर पड़ा—ऐसा इसमें बताया है।

वैदिक वाङ्मय में तीर्थंकर

आजकल के इतिहास ऋग्वेद, यजुर्वेद आदि को प्राचीन ग्रन्थ मानते हैं। उनमें भी जैन तीर्थंकरों का वर्णन है। जैनियों के २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि का नाम नीचे के मन्त्रों में है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

(ऋग्वेद, १/८९/६)

भावार्थ—महा कीर्तिवान् इन्द्र विश्ववेत्ता पूषा ताक्ष्र्य रूप अरिष्टनेमि व बृहस्पति हमारा कल्याण करें।

वाजस्य नु प्रसव आ बभूवेमा च विश्वा भुवनानि सर्वतः ।
स नेमि राजा परियाति विद्वान् प्रजां पुष्टिं वर्धयमानो अस्मे स्वाहा ॥

(यजुर्वेद, अध्याय ९ मन्त्र २५)

भावार्थ—भावयज्ञ को प्रगट करने वाले ध्यान का इस संसार के सब भूत-जीवों के लिये सर्व प्रकार से यथार्थ रूप कथन करके जो नेमिनाथ अपने को केवलज्ञानादि आत्मचतुष्टय के स्वामी और सर्वतः प्रगट करते हैं और जिनके दयामय उपदेश से जीवों को आत्मस्वरूप की पुष्टि शीघ्र बढ़ती है, उसकी आहुति हो।

अर्हन् विभर्षि सायकानि धन्वार्हन्निष्कं यजतं विश्वरूपम् ।
अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वं न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति ॥

(ऋग्वेद मं० २ सू० ३३, मंत्र १०)

भावार्थ—हे अर्हन् ! आप वस्तु स्वरूप धर्म रूपी वाणी को, उपदेशरूपी धनुष को तथा आत्मचतुष्टय रूप आभूषणों को धारण किये हो। हे अर्हन् ! आप विश्वरूप प्रकाशक केवलज्ञान को प्राप्त हो। हे अर्हन् ! आप इस संसार के सब जीवों की रक्षा करते हो। हे कामादि को जलाने वाले ! आपके समान कोई बलवान् नहीं है।

इस मन्त्र में अरहन्त की प्रशंसा है, जो जैनियों के पांच परमेष्ठियों में प्रथम हैं। श्री नग्न साधु महावीर भगवान् का नाम नीचे के मन्त्र में है—

आतिथ्यरूपंमग्रसरं महावीरस्य नग्नहुः ।
रूपमुपसदामेतत्तिस्रो रात्रीः सुरासुता ॥

(यजुर्वेद, अध्याय १९, मन्त्र १४)

योगवाशिष्ठ अ० १५, श्लोक ८ में श्री रामचन्द्र जी कहते हैं—

नाहं रामो न मे वांछा भावेषु च न मे मनः ।
शान्तिमास्थातुमिच्छामि स्वात्मन्येव जिनो यथा ॥

भावार्थ—न मैं राम हूं। न मेरी वांछा पदार्थों में है। मैं तो जिन के समान अपनी आत्मा में ही शान्ति स्थापित करना चाहता हूं।

वाल्मीकि रामायण(बालकांड १४ सर्ग, श्लोक १२)में महाराज दशरथ द्वारा श्रमणों को भोजन देने का उल्लेख मिलता है:—

"श्रमणाश्चैव भुञ्जते"

श्रमणाः दिगम्बराः—भूषण टीका

महाभारत (वन पर्व अ० १८३, पृ० ७२७; मुद्रित १९०७ शरतचन्द्र सोम) के अनुसार हैहय वंशी काश्यप गोत्री आदि सबने महाव्रतधारी महात्मा अरिष्टनेमि मुनि को प्रणाम किया।

यहां २२वें तीर्थंकर का संकेत है, जिनका नाम ऊपर वेद के मन्त्रों में भी आया है।

मार्कण्डेय पुराण (अ० ५३) के अनुसार—ऋषभदेव ने पुत्र भरत को राज्य दे वन में जाकर महा संन्यास ले लिया। (यहां जैनियों के प्रथम तीर्थंकर का वर्णन है।)

भागवत के स्कन्ध ५ अ० २ पृ० ३६६-६७ में जैनियों के प्रथम तीर्थंकर श्री ऋषभदेव को महर्षि लिखकर उनके उपदेश की बहुत प्रशंसा लिखी है। भागवत के टीकाकार लाला शालिग्राम जी पृ० ३७२ में लिखते हैं कि शुकदेव जी ने जगत् को मोक्ष-मार्ग दिखाया और अपने आप भी मोक्ष होने के कर्म किये, इसीलिये शुकदेव जी ने ऋषभदेव जी को नमस्कार किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैनधर्म की मौलिकता

जैनधर्म हिन्दू धर्म की शाखा नहीं हो सकता। क्योंकि जो उसकी शाखा होता है उसका मूल भी वही होता है। जो हिन्दू कर्तावादी हैं उनसे विरुद्ध जैनमत कहता है कि जगत् अनादि व अकृत्रिम है, उसका कर्ता ईश्वर नहीं है। जो हिन्दू एक ही ब्रह्ममय जगत् मानते हैं उनसे विरुद्ध जैनमत कहता है कि लोक में अनन्त परब्रह्म परमात्मा, अनन्त संसारी आत्मा, पुद्‌गल आदि जड़ पदार्थ, ये सब स्वतन्त्र हैं। कोई किसी का खण्ड नहीं। जो हिन्दू आत्मा या पुरुष को कूटस्थ नित्य या अपरिणामी मानते हैं उनसे विरुद्ध जैनधर्म कहता है कि आत्मायें स्वभाव न त्यागते हुए भी परिणमनशील हैं, तब ही राग-द्वेष भावों को छोड़ वीतराग हो सकती हैं। जैन लोग उन ऋग्वेदादि वेदों को नहीं मानते जिनको हिन्दू लोग अपना धर्मशास्त्र मानते हैं। प्रोफेसर जैकोबी ने आक्सफोर्ड में जैनधर्म का हिन्दू धर्मों से मुकाबला करते हुए कहा है—जैनधर्म सर्वथा स्वतन्त्र है। मेरा विश्वास है कि यह किसी का अनुकरण रूप नहीं है और इसीलिये प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान और धर्म-पद्धति के अध्ययन करने वालों के लिये यह एक महत्त्व की बात है।

(पृष्ठ १४१ गुजराती जैन दर्शन, प्रकाशक अधिपति जैन, भावनगर)

बौद्धधर्म पदार्थ को नित्य नहीं मानता है, आत्मा को क्षणिक मानता है, जब कि जैनधर्म आत्मा को द्रव्य की अपेक्षा नित्य, किन्तु अवस्था की अपेक्षा अनित्य मानता है। जैनधर्म में छः द्रव्य हैं, उनकी बौद्धों के यहां मान्यता नहीं है।

इसके विरुद्ध बौद्ध जैनधर्म की नकल जरूर है। पहले स्वयं गौतम बुद्ध जैन मुनि पिहिताश्रव के शिष्य-साधु हुए। फिर उन्होंने मृतक प्राणी में जीव नहीं होता, ऐसी शंका होने पर अपना भिन्न मत स्थापित किया। (देखो जैनदर्शन-सार, देवनन्दि कृत)

प्रोफेसर जैकोबी भी कहते हैं—

"The Buddhist frequently refer to the Nirgranthas or Jains as a rival sect but they never so much as hint this sect was a newly founded one. On the contrary, from the way in which they speak of it, it would seem that this sect of Nirgranthas was at Budha's time already one of long standing, or in other words, it seems probable that Jainism is considerably older than Buddhism.

(देखो पृष्ठ ४२ गुजराती जैनदर्शन)

भावार्थ—बौद्धों ने बार-बार निर्ग्रन्थ या जैनियों को अपना मुकाबिला करने वाला कहा है, परन्तु वे किसी स्थल पर कभी भी यह नहीं कहते हैं कि यह एक नया स्थापित मत है। इसके विरुद्ध जिस तरह वे वर्णन करते हैं उससे यही प्रकट होगा कि निर्ग्रन्थों का धर्म बुद्ध के समय में दीर्घ काल से मौजूद था, अर्थात् यही सम्भव है कि जैनधर्म बौद्धधर्म से अधिक पुराना है।

जैकोबी ने आस्रव शब्द को बौद्ध ग्रन्थों में पाप के अर्थ में देखकर तथा जैन ग्रन्थों में जिससे कर्म आते हैं व जो कर्म आत्मा में आता है ऐसे असली अर्थ में देखकर यह निश्चय किया है कि जहां आस्रव के मूल अर्थ हैं वही धर्म प्राचीन है।

Dr. Ry Davids डॉ० राइ डेविड्स ने "Buddhist India" p. 143 में लिखा है कि—

"The Jains have remained as an organised Community all through the History of India from before the rise of Buddhism down today."

भावार्थ—जैन लोग भारत के इतिहास में बौद्ध धर्म के बहुत पहिले से अब तक संगठित जाति के रूप में चले आ रहे हैं। लोकमान्य बालगंगाधर तिलक 'केसरी' पत्र में १३ दिसम्बर १९०४ में लिखते हैं कि—बौद्धधर्म की स्थापना के पूर्व जैनधर्म का प्रकाश फैल रहा था। बौद्धधर्म पीछे से हुआ यह बात निश्चित है। हंटर साहिब अपनी पुस्तक इण्डियन इम्पायर के पृष्ठ २०६ पर लिखते हैं कि—

जैनमत बौद्धमत से पहिले का है। ओल्डनवर्ग ने पाली पुस्तकों को देखकर यह बात कही है कि जैन और निर्ग्रन्थ एक हैं। इनके रहते हुए बाद में बौद्धमत उत्पन्न हुआ। (See Buddha's life & Haey's translation 1882)

जैनमत बौद्धमत से भी उतना ही भिन्न है जितना भिन्न कि हम उसे किसी भी और मत से कह सकते हैं।

बौद्ध ग्रन्थों में तीर्थंकर

ऐतिहासिक खोज (Historical Gleanings) नाम की पुस्तक में, जिसको बाबू विमलचरण लॉ एम० ए० बी० एल० नं० २४ सुकिया स्ट्रीट, कलकत्ता ने सन् १९२२ में सम्पादन कर प्रकाशित कराया है, इस सम्बन्ध में बहुत से प्रमाण लिखे हैं, जिनमें से कुछ यहां नीचे दिये जाते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) गौतम बुद्ध राजगृही में निर्ग्रन्थ नातपुत्र (श्री महावीर) के शिष्य चुलसकुल दादी से मिले थे।

(मज्झिमनिकाय अ० २)

(२) श्री महावीर गौतम बुद्ध से पहिले निर्वाण हुए। (मज्झिमनिकाय सामगामसुत्त व दीघनिकाय पातिक सुत्त)

(३) बुद्ध ने अचेलकों (नग्न दिगम्बर साधुओं) का वर्णन लिखा है। (दीघनिकाय कस्सप सिंह नादे)

(४) निर्गन्थ श्रावकों का देवता निर्गन्थ है—निर्गन्थ सावकानाम् निर्गन्थो देवता। (पाली त्रिपिटक निहुशपत्र १७३-१७४)

(५) महावीर स्वामी ने कहा है कि शीत जल में जीव होते हैं—सो विए सीतोदके सत संज्ञा होंति।

(सुमंगल विलासिनी, पत्र १६८)

(६) राजगृही में एक दफा बुद्ध ने महानम को कहा कि इसिगिला (ऋषिगिरि) के तट पर कुछ निर्ग्रन्थ भूमि पर लेटे हुए तप कर रहे थे तब मैंने उनसे पूछा—ऐसा क्यों करते हो? उन्होंने जवाब दिया कि उनके नातपुत्र ने जो सर्वज्ञ व सर्वदर्शी है उनसे कहा है कि पूर्वजन्म में उन्होंने पाप किये हैं उन्हीं के क्षय करने के लिये मन, वचन, काय का निरोध कर रहे हैं।

(मज्झिमनिकाय, जिल्द १ पत्र ९२-९३)

(७) लिच्छवों का सेनापति सीह निर्गन्थ नातपुत्र का शिष्य था। (विनयपिटक का महावग्ग)

(८) निर्ग्रन्थ मतधारी राजा के खजांची के वंश में भद्रा को, श्रावस्ती के मंत्री के वंश में अर्जुन को, बिम्बसार के पुत्र अभय को, श्रावस्ती के सश्रीगुप्त और गरहदिन्न को बुद्ध ने बौद्ध बनाया।

(धम्मपाल कृत प्रमथदीपिनी व धम्मपदत्थ कथा, जि० १)

(९) धनञ्जय श्रेष्ठी की पुत्री विशाखा निर्ग्रन्थ मिगार श्रेष्ठी के पुत्र पुराणवर्द्धक को विवाही गई थी। श्रावस्ती में मिगार श्रेष्ठी ने ५०० नग्न साधुओं को आहार दान दिया। (विसाखावत्थु धम्मपद कथा, जि० १)

जैन धर्म के शाश्वत सिद्धान्त

हमारा धर्म, जैन धर्म है। तुम जानते हो, जैन किसे कहते हैं? हां, ठीक है। तुम अभी इतनी दूर नहीं जा सके हो। लो, मैं ही बता दूंगा। परन्तु ज़रा ध्यान से सुनो।

जैन का अर्थ है 'जिन' को मानने वाला। जो जिन को मानता हो, जिन की भक्ति करता हो, जिन की आज्ञा का पालन करता हो, वह जैन कहलाता है।

तुम प्रश्न कर सकते हो, जिन किसे कहते हैं? जिन का अर्थ है, जीतने वाला। किसको जीतने वाला? अपने असली शत्रुओं को जीतने वाला। असली शत्रु कौन हैं? असली शत्रु राग और द्वेष हैं। बाहर के कल्पित शत्रु इन्हीं के कारण पैदा होते हैं।

राग किसे कहते हैं? मनपसन्द चीज पर मोह। द्वेष क्या है? मन की नापसन्द चीज नफरत। ये राग और द्वेष दोनों साथ-साथ रहते हैं। जिनको राग होता है, उसे किसी के प्रति द्वेष भी होता है और जिसे द्वेष होता है, उसे किसी के प्रति राग भी होता है।

राग और द्वेष ही असली शत्रु क्यों हैं? इसलिये शत्रु हैं कि ये हमें अत्यन्त दुःख देते हैं, हमारा नैतिक पतन करते हैं, हमारी आत्मा की आध्यात्मिक उन्नति नहीं होने देते। राग के कारण माया और लोभ उत्पन्न होते हैं और द्वेष के कारण क्रोध तथा लोभ उत्पन्न होते हैं। क्रोध, मान (गर्व), माया (कपट), और लोभ को जीतने वाला ही सच्चा जिन है।

जिन राग और द्वेष से विल्कुल रहित होते हैं, इसलिये उनका नाम वीतराग भी है। वे अठारह दोषों से रहित होते हैं। राग और द्वेष रूपी असली शत्रुओं का हनन अर्थात् नाश करते हैं, इसलिए ये अरिहन्त भी कहलाते हैं, अरि—शत्रु, हन्त—नाश करने वाला है।

जिन को अरहन्त भी कहते हैं। अर्हंत किसे कहते हैं? अर्हंत का अर्थ योग्य है। किस बात के योग्य? पूजा करने के योग्य। जो महापुरुष राग-द्वेष को जीत कर 'जिन' हो जाते हैं, वे संसार के पूजने योग्य हो जाते हैं। पूजा का विशुद्ध अर्थ भक्ति है। अतः जो महापुरुष राग-द्वेष को जीतने के कारण संसार के लिए पूज्य यानी भक्ति करने के योग्य हो जाते हैं, वे अर्हंत कहलाते हैं। भक्ति का अर्थ है सम्मान करना, उनके बताये हुए सत्पथ पर चलना।

जिन को भगवान् भी कहते हैं। भगवान् का क्या अर्थ है? भगवान् का अर्थ है ज्ञान रूपी संपति वाला। राग और द्वेष को पूर्ण रूप से नष्ट करने के बाद 'केवल ज्ञान' उत्पन्न हो जाता है। 'केवल ज्ञान' के द्वारा जिन भगवान् तीन लोक और तीन काल की

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सब बातों को सूर्य प्रकाश के समान स्पष्ट रूप से एक साथ जान लेते हैं।

जिन भगवान् को परमात्मा भी कहा जाता है। परमात्मा का अर्थ है, परम शुद्ध आत्मा। जो परम शुद्ध आत्मा चेतन हो, वह परमात्मा है। राग-द्वेष को नष्ट करने के बाद ही आत्मा शुद्ध होता है और परमात्मा बनता है।

जैनधर्म क्रोधी, मानी, मायावी और लोभी संसारी देवताओं को अपना इष्टदेव नहीं मानता। भला जो स्वयं काम, क्रोध आदि विकारों में फंसे पड़े हैं, वे दूसरों को विकार रहित होने के लिये क्या आदर्श हो सकते हैं? इसलिये जैन-धर्म में सच्चे देव वे ही माने गये हैं, जो रागद्वेष को जीतने वाले हों, कर्म रूपी शत्रुओं को नष्ट करने वाले हों, तीन लोक के पूजनीय हों, केवल ज्ञान वाले हों तथा परम शुद्ध आत्मा हों।

तुम प्रश्न कर सकते हो, इस प्रकार राग और द्वेष को जीतने वाले कौन जिन भगवान् हुए हैं, इसका उत्तर है एक दो नहीं, अनेक हो गये हैं। जानकारी के लिये एक दो प्रसिद्ध नाम बताये देता हूँ।

वर्तमान काल-चक्र में सबसे पहले भगवान् ऋषभदेव हुए हैं। आप भारतवर्ष के सुप्रसिद्ध साकेत नगरी के रहने वाले राजा थे। आपने राजा के रूप में न्याय नीति के साथ प्रजा का पालन किया और बाद में संसार त्याग कर मुनि बने एवं रागद्वेष को क्षय करके जिन भगवान् होकर मोक्ष में पहुंच गये।

भगवान् नेमिनाथ, भगवान् पार्श्वनाथ, और भगवान् महावीर भी जिन भगवान् थे। ये महापुरुष राग और द्वेष को पूर्ण रूप से नष्ट करके केवल ज्ञान को प्राप्त कर चुके थे। *अपने समय में इन्होंने जनता में अहिंसा और सत्य की प्राण-प्रतिष्ठा की और* राग-द्वेष पर विजय पाने के लिए सच्चे आत्म-धर्म का उपदेश देकर आत्मा को परमात्मा बनाने का मार्ग प्रशस्त किया।

निर्ग्रन्थ गुरु—संसारी विषय-वासनाओं से रहित, आरम्भ-रहित और परिग्रह से रहित रहकर सद् ज्ञान और ध्यान में लीन रहने वाले तथा संसारी सम्पूर्ण मानव को सन्मार्ग बतलाने वाले निर्ग्रन्थ गुरु होते हैं। कहा भी है कि :—

विषयाशावशातीतो निरारंभोऽपरिग्रहः।
ज्ञानध्यानतपोरक्तस्तपस्वी स प्रशस्यते॥

मनुष्य के हृदय के अन्धकार को दूर करने वाला कौन होता है? क्या तुमने कभी इस प्रश्न पर कुछ सोच-विचार किया है? मालूम होता है, अभी तक इस तरफ तुम्हारा लक्ष्य नहीं गया है। आओ, आज इस पर कुछ विचार कर लें।

मनुष्य के मानसिक ज्ञानान्धकार को दूर करने वाले और ज्ञान का प्रकाश फैलाने वाले गुरुदेव के बिना दुनिया के भोग-विलासों में भूले हुए प्राणी को कौन मार्ग बता सकता है? ज्ञान की आंखें गुरु ही देते हैं।

हाँ, तो क्या तुम बता सकते हो, गुरु कौन होते हैं? सच्चे गुरु का क्या लक्षण है? जैन धर्म में गुरु किसे कहते हैं? जैन धर्म में गुरु का महत्त्व बहुत बड़ा है, परन्तु है वह सच्चे गुरु का। जैन-धर्म अन्धश्रद्धालु धर्म नहीं है, जो हर किसी दुनियादारी भोग-विलासी आदमी को गुरु मानकर पूजने लगे। वह गुणों की पूजा करता है, शरीर और वेष की नहीं। बाह्य और आभ्यन्तर परिग्रह से और क्रोध से रहित रहकर जो शरीर से भी निर्ममत्व हो, जैन धर्म ऐसे गुरु को पूजने वाला है। अतः वह गुणों का ग्राहक है।

हाँ, तो जैन धर्म में वही त्यागी आत्मा गुरु माना जाता है, जो धन-दौलत का त्यागी हो, मकान-दुकान आदि के प्रपंचों से रहित हो, अहिंसा सत्य आदि का स्वयं आचरण करता हो और बिना किसी लोभ-लालच के जनकल्याण की भावना से उपदेश देता हो। सच्चा गुरु वही है, जो जिन भगवान् के द्वारा प्ररूपित शास्त्रों में बताए हुए आत्मा से परमात्मा बनने के आदर्श को सामने रखकर अपने विशुद्ध आचरण तथा ज्ञान से उस आदर्श को प्राप्त करना चाहता हो।

जैन धर्म में त्याग का महत्त्व है। भोग-विलासों को त्याग कर आध्यात्मिक साधना की आराधना करना ही श्रेष्ठ जीवन का लक्षण है। यही कारण है कि जैन साधुओं का तपश्चरण की दृष्टि से बड़ा ही कठोर जीवन होता है। जैन साधु कड़ी सरदी पड़ने पर भी आग नहीं तापते हैं और शरीर ढकने के कपड़े की भी इच्छा नहीं करते। प्यास के मारे कंठ सूख जाये फिर भी पानी पीने की इच्छा नहीं करते हैं। चाहे जितनी भूख लगी हो, पर भोजन की इच्छा नहीं करते हैं। एक ही बार नियत समय में आहार करते हैं। बुढ़ापा या बीमारी होने पर भी पैदल चलते हैं, कोई भी सवारी काम में नहीं लाते। पैरों में जूते नहीं पहनते। शराब आदि नशीली चीजों को काम में नहीं लाते। पूर्ण ब्रह्मचर्य पालते हैं, स्त्री को माता-बहन के समान हमेशा मानते हैं। कौड़ी, पैसा आदि कुछ धन पास नहीं रखते।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जैन साधुओं के पांच महाव्रत बतलाए गये हैं, जो प्रत्येक साधु को, चाहे वह छोटा हो या बड़ा हो, अवश्य पालन करने पड़ते हैं :—

(१) अहिंसा— मन से, वचन से, शरीर से किसी भी जीव की हिंसा न करना, न दूसरों से कराना, न करने वालों का अनुमोदन-समर्थन ही करना।

(२) सत्य— मन से, वचन से, शरीर से न स्वयं झूठ बोलना, न दूसरों से बुलवाना, तथा न बोलने वालों का अनुमोदन करना।

(३) अचौर्य— मन से, वचन से, शरीर से न स्वयं चोरी करना, न दूसरों से करवाना, न करने वालों का अनुमोदन करना।

(४) ब्रह्मचर्य— मन से, वचन से, शरीर से मैथुन-व्यभिचार न स्वयं करना, न दूसरों से करवाना, न करने वालों का अनुमोदन करना।

(५) अपरिग्रह— मन से, वचन से, शरीर से परिग्रह को पास नहीं रखना।

जैन साधु का जीवन तप और त्याग का इतना कठोर जीवन है कि आज उसके समान कोई दूसरा नहीं मिलेगा। यही कारण है कि जैन साधु संख्या में बहुत थोड़े हैं, जब कि दूसरे वेषधारी साधुओं की देश में भरमार है। आज छप्पन लाख साधु नामधारियों की फौज भारतवर्ष के लिये भार बन चुकी है। परन्तु सच्चा गुरु पद हरेक व्यक्ति धारण नहीं कर सकता। कहा है—गुरु कीजे जान कर, पानी पीजै छान कर।

शास्त्र—जिसमें हिंसा का उपदेश तथा देवी देवता के सामने बकरा गाय, भैंस चढ़ाने से धर्म होता है ऐसा जिसमें वर्णन किया गया हो, और जिस शास्त्र को सुनने मात्र से पाप भाव का बंध होता हो उसको शास्त्र नहीं कहते। इन पापों से रहित अहिंसा मार्ग का जिसमें वर्णन किया गया हो वही प्राणी मात्र का कल्याण करने वाला है। वही सच्चा शास्त्र है।

तुम्हारा कौन-सा धर्म है? जैन धर्म। धर्म का क्या अर्थ है? जो दुःख से, दुर्गति से, पापाचार से, पतन से बचाकर आत्मा को ऊँचा उठाने वाला हो, धारणा करने वाला हो, वह धर्म है।

सच्चा धर्म कौन-सा होता है? जिससे किसी को दुःख न पहुंचे, ऐसा जो भी अच्छा विचार अच्छा आचार है, वही सच्चा धर्म है। क्या जैन धर्म भी सच्चा धर्म है? हाँ, वह अच्छे विचार और अच्छे आचार वाला धर्म है, इसलिए सच्चा धर्म है।

जैन धर्म का क्या अर्थ है? जिन भगवान् का कहा हुआ धर्म। जिन भगवान् कौन? जो राग-द्वेष को जीतकर पूर्ण पवित्र और निर्मल आत्मा हो गये हैं, वे जिन भगवान् हैं श्री महावीर, पार्श्वनाथ आदि।

जैनधम के क्या दूसरे भी कुछ नाम हैं? हां, दया धर्म, स्याद्वाद धर्म, अर्हंत धर्म, निर्ग्रंथ (दिगम्बर) धर्म आदि। जैन धर्म में दया का बड़ा महत्त्व है, इसलिए वह दया धर्म है। स्याद्वाद का अर्थ है पक्षपात-रहित! समभावका समर्थन करने से जैन धर्म स्याद्वाद धर्म है। राग, द्वेष, मोह, अज्ञान से मुक्त होने के कारण यह अर्हंत धर्म है। निर्ग्रन्थ का अर्थ है—संपूर्ण लंगोटी तक के परिग्रह से रहित होना। जैन धर्म परिग्रह का अर्थात् धन सम्पत्ति के संग्रह का त्याग बतलाता है, इसलिए वह निर्ग्रन्थ साधु धर्म है।

जैनधर्म कब से चला? जैन धर्म नया नहीं चला है, वह अनादि है। दया ही तो जैन धर्म है और संसार में जिस प्रकार दुःख अनादि है, उसी प्रकार जीवों को दुःख से बचाने वाली दया भी अनादि है। अनादि दया का मार्ग ही जैनधर्म कहलाता है।

जिन भगवान् का कहा हुआ धर्म ही तो जैन धर्म है, इसलिए अनादि कैसे हुआ? जिन भगवान् कोई एक नहीं हुए हैं। पूर्व काल में जिन भगवान् अर्थात् तीर्थंकर अनन्त हो गये हैं, और भविष्य में भी अनन्त होते रहेंगे, अतः जैन-धर्म अनादि काल से चला आता है। समय-समय पर होने वाले जिन भगवान् उसे अधिकाधिक प्रकाशित करते हैं, देश-काल व परिस्थिति के अनुसार उसकी नवीन पद्धति से पुनः स्थापना करते हैं। जिन भगवान् जैन धर्म के चलाने वाले नहीं, वरन् उसका समय-समय पर सुधार करने वाले उपचारक हैं।

सच्चा जैन किसे कहते हैं? धर्म का मूल दया है, अस्तु जो जीव-मात्र को अपने समान समझ कर उनकी हिंसा से बचता है, प्राणी मात्र के लिये दया भाव रखता है, वही सच्चा जैन है।

जैन धर्म का पालन कौन कर सकता है? जैन धर्म का कोई भी भव्य प्राणी पालन कर सकता है। जैन धर्म में जाति और देश का बन्धन नहीं है। किसी भी जाति का और किसी भी देश का मनुष्य जैन धर्म का पालन कर सकता है। हिन्दू हो, मुसलमान

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो, ईसाई हो, चाण्डाल हो, अंग्रेज हो, कोई भी हो, सभी जैन धर्म का पालन कर सकते हैं।

जैन धर्म का सिद्धान्त बहुत गम्भीर है। अतः उसका पूरा परिचय तो जैन धर्म के प्राचीन ग्रन्थों के अध्ययन से हो सकता है। हां, संक्षेप में जैन धर्म के विषय की बातें इस प्रकार हैं :—

१. जगत् अनादि है।
२. आत्मा अमर है।
३. आत्मा अनन्त है।
४. आत्मा ही परमात्मा होता हे।
५. आत्मा ही कर्म बांधता है।
६. आत्मा ही कर्म तोड़ता है।
७. कर्म ही संसार है।
८. कर्म का क्षय ही मुक्ति है।
९. कर्म खुद जड़ है।
१०. अशुद्ध भावों से कर्म बंधते हैं।
११. शुद्ध भावों से कर्म टूटते हैं।
१२. स्वर्ग, नरक और मोक्ष है।
१३. पुण्य, पाप है।
१४. जांत-पांत कोई नहीं।
१५. शुद्ध आचरण ही श्रेष्ठ है।
१६. अहिंसा ही सबसे बड़ा धर्म है।

जैन-शासन का माहात्म्य

संसार में केवल जैन धर्म ही सारे दुःखों को दूर कर सकता है। जैन धर्म क्या है, यदि आप लोग इसे अच्छी तरह समझ लें तो यह बात आसानी से समझ में आ जायगी कि यही धर्म हमारा कल्याण कर सकता है। इसलिये आचार्य अमितगति ने कहा है—

मृत्यूत्पत्ति वियोगसंगमभयव्याध्याधिशोकादयः,
सूद्यंते जिनशासनेन सहसा संसारविच्छेदिना।

सूर्येणेव समस्तलोचनपथप्रध्वंसबद्धोदया,
हन्यन्ते तिमिरोत्कराः सुखहरा नक्षत्रविक्षेपिणा॥ १९॥

जैसे नक्षत्रों को छिपाने वाले सूर्य के द्वारा सबकी आंखों में देखने की शक्ति को रोकने वाले, सुख हरने वाले, अन्धकार के समूह नष्ट हो जाते हैं, इसी प्रकार [संसार का नाश करने वाले जैनशासन के द्वारा मृत्यु-जन्म, संयोग-वियोग, भय-रोग, आधि-शोक आदि एकदम दूर हो जाते हैं।

आचार्य ने यहाँ जैन शासन का माहात्म्य बताया है। उन्होंने जैन शासन की उपमा सूर्य से की है। जैसे सूर्य अन्धकार का नाश कर देता है, उसी प्रकार जैन शासन संसार के जन्म-मरण, भय शोकादि दुःखों का नाश कर देता है।

संसार में जितने धर्म हैं, वे किसी व्यक्ति-विशेष द्वारा स्थापित किये गये हैं और उस धर्म का नाम भी उसी व्यक्ति-विशेष नाम के ऊपर रक्खा गया है, जैसे बुद्ध द्वारा स्थापित किया हुआ धर्म बौद्ध धर्म कहलाया, विष्णु का धर्म वैष्णव, ईसा का धर्म ईसाई आदि। किन्तु प्रश्न यह है कि क्या धर्म को कोई व्यक्ति बना सकता है? वास्तव में व्यक्ति धर्म को नहीं बनाता, अपितु धर्म व्यक्ति को बनाता है। धर्म के कारण व्यक्ति महान् बनता है, व्यक्ति के कारण धर्म महान् नहीं बनता। बुद्ध ने धर्म नहीं बनाया बल्कि धर्म ने बुद्ध को महात्मा बनाया। ईसा ने धर्म स्थापित नहीं किया, बल्कि धर्म ने ईसा को महान बनाया। तब फिर बुद्ध और ईसा, विष्णु और शिव ने जो धर्म स्थापित किया; वह सब क्या था?

वास्तव में वे सब महापुरुष थे, किन्तु इन्होंने धर्म की स्थापना नहीं की। धर्म की स्थापना की भी नहीं जा सकती। स्थापना होती है अपने मत की। अतः बौद्ध, ईसाई आदि मत तो हो सकते हैं, सम्प्रदाय भी हो सकते हैं, किन्तु धर्म नहीं हो सकते। धर्म तो आत्मा का स्वभाव है और आत्मा का स्वभाव किसी के द्वारा स्थापित नहीं किया जा सकता, उसका प्रारम्भ नहीं किया जा सकता।

जैन धर्म किसी व्यक्ति द्वारा चलाया या स्थापित किया हुआ नहीं है। यह तो जिनों का धर्म है। जिन का अर्थ है वे व्यक्ति जिन्होंने अपने आत्मा के राग-द्वेष मोहादि शत्रुओं को जीत लिया हो। जो आत्मा के इन विकार रूपी शत्रुओं को जीत लेते हैं, वे शुद्ध निर्विकार वीतराग हो जाते हैं, उन्हें आत्म-दर्शन होने लगता है, उन्हें आत्मा के शुद्ध स्वरूप की उपलब्धि हो जाती है। वे व्यक्ति चाहे कोई भी हों, उनका नाम 'जिन' या 'अरहन्त' कहलाता है। वे सब लोगों को आत्मा के शुद्ध रूप और उसकी प्राप्ति के जो उपाय बताते हैं, वही जैनधर्म कहलाता है। जैन धर्म तो वास्तव में आत्मजयी पुरुषों द्वारा बताया गया वह धर्म है, जिसके द्वारा आत्मा की सम्पूर्ण

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

शुद्धि की जा सकती है, जिसके द्वारा आत्मा की उपलब्धि हो सकती है। इसे दूसरे शब्दों में कहा जाय तो यह तो आत्मा का 'निजधर्म' है।

इसीलिये आचार्य समन्तभद्र ने भगवान् की स्तुति करते हुए उनके तीर्थ, शासन या धर्म को सर्वोदय तीर्थ बताया है—

सर्वान्तवत्तद्गुणमुख्यकल्पं सर्वान्तशून्यं च मिथोऽनपेक्षम् ।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तं सर्वोदयं तीर्थमिदं तवैव ॥

अर्थात् आपका तीर्थ या शासन द्रव्य-पर्याय, विधि-निषेध, एक-अनेक आदि समस्त धर्मों को लिये हुए है, गौण और मुख्य की कल्पना को साथ में लिये हुए है। जो शासन सब धर्मों में पारस्परिक अपेक्षा का प्रतिपादन नहीं करता, वह सब धर्मों से शून्य है। इसलिए आपका ही शासन सब दुःखों का अंत करने वाला है और वही सब प्राणियों के अभ्युदय का कारण है।

आगे समन्तभद्र स्वामी जैन शासन की विशेषता बताते हुए कहते हैं—

दमादमत्यागसमाधिनिष्ठं नयप्रमाणप्रकृताञ्जसार्थम्,
अधृष्यमन्यैरखिलैः प्रवादैर्जिन त्वदीयं मतमद्वितीयम् ॥

अर्थात् हे जिनदेव! आपका मत दया, इन्द्रियदमन, त्याग और प्रशस्त ध्यान से युक्त है, नय और प्रमाणों से सम्पूर्ण वस्तुतत्त्व को बिल्कुल स्पष्ट करने वाला है, दूसरे सारे वादों के द्वारा यह दूषित नहीं हो सकता, ऐसा आपका अद्वितीय शासन है।

आचार्य ने इसमें जैन शासन की विशेषताओं पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि जैन शासन में जीवों की रक्षा का विधान है। यह शासन वस्तुतः जीव-दया की नींव पर ही खड़ा है। अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, क्षमा, परोपकार आदि सभी व्रत दया पर ही निर्भर हैं। दया का जैन शासन में इतना सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है कि आत्मा की उपलब्धि के सारे आयोजन स्व-दया में सम्मिलित हो जाते हैं। जीव के बुरे संकल्प और विचार, बुरी भावनाएं जीव के प्रति अदया कहलाती हैं, अतः उस अदया को दूर किये बिना स्व की उपलब्धि संभव नहीं है। अतः दया ही धर्म का वास्तविक मूलाचार है।

इस शासन में इन्द्रिय-दमन का विधान है। आत्मा इन्द्रियों के आधीन होकर विषयों में रमण कर रहा है, इष्ट की प्राप्ति के लिये व्याकुलता और अनिष्ट के वियोग के लिये प्रयत्न इन्द्रिय-लिप्सा और विषयों की रस-लालसा की वजह से है। जब तक इन्द्रियों का दमन नहीं किया जायेगा, उन्हें विजय नहीं किया जायगा, तब तक आत्मा की प्रवृत्ति संसार की ओर बनी रहेगी, वह अपने को पाने की ओर उन्मुख ही नहीं होगा। इसीलिये तो 'आत्मा का अहित' विषय-कषाय कहा गया है। ये विषय और कषाय आत्मा का अहित करने वाले हैं। आत्मा का अहित यही है कि उसे पराधीन बना देते हैं। इन्हें जीत कर ही आत्मा स्वाधीन, स्वतन्त्र हो सकता है और यह स्वाधीनता, इन्द्रिय-दासता से मुक्ति तभी मिल सकती है जब इन्द्रियों का दमन किया जाय।

आत्मा के साथ जो परतत्त्व लगा हुआ है और जिसे आत्मा ने 'स्व' मान लिया है, उसका त्याग करना आवश्यक है। पर को स्व मानकर ही तो आत्मा ने यह संसार बसा रक्खा है। पर में स्व बुद्धि हट जाय, स्व को स्व मानने लग जाय तो इस संसार से मुक्ति सरल हो जाय। पर में ममत्व अर्थात् मेरापन ही परिग्रह कहलाता है। जिन्हें पर होते हुए भी वह आत्मा अपना मानता है, वह कोई भी पदार्थ हो, चाहे अपना शरीर हो, कुटुम्ब हो, धन दौलत हो या कुछ भी—ये सब चीज परिग्रह कहलाती हैं और इनमें स्वबुद्धि भी परिग्रह कहलाती है। इन दोनों बाह्य व आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग करके ही स्व की उपलब्धि हो सकती है। अतः जैन शासन में त्याग पर विशेष बल दिया गया है।

इन तीनों दया, दम, और त्याग के अतिरिक्त जैन शासन में समाधि अर्थात् प्रशस्त ध्यान भी बताया गया है। संसारी जीव दिन-रात ध्यान तो करता ही रहता है, वह आर्त और रौद्र ध्यान में सदा फंसा रहता है। दिन-रात विषयों और कषायों का ही ध्यान करता रहता है। लेकिन उसमें भी अनन्त संसार की वृद्धि ही होती है। अतः उन्हें त्याग कर प्रशस्त ध्यान करने का विधान किया है। जब अप्रशस्त ध्यान छोड़ कर प्रशस्त ध्यान—धर्म ध्यान और शुक्ल ध्यान—करेंगे, तभी कर्म-जाल को तोड़ा जा सकेगा। आत्मा जब अपने शुद्ध स्वरूप के बारे में एकाग्र मन से चिंतन करता रहता है तो उसे अपने शुद्ध स्वरूप का ज्ञान होता है और शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति का उत्साह होता है। आत्मा के साथ कर्मों का सम्बन्ध अप्रशस्त ध्यानों के कारण ही है। उस सम्बन्ध को प्रशस्त ध्यानों के द्वारा ही तोड़ा जा सकता है और जब वह सम्बन्ध टूट जाता है तो आत्मा शुद्ध व निर्मल हो जाती है। उसका आवागमन, जन्म-मरण नष्ट हो जाता है और वह मुक्त हो जाता है।

इस प्रकार जैन शासन की प्रथम विशेषता यह है कि उपर्युक्त चारों बातें बताई गई हैं जिनके द्वारा आत्मा की मुक्ति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हो सकती है। दूसरी विशेषता यह है कि जैन शासन में एकान्त दृष्टि नहीं है। एकान्त दृष्टि से पक्ष-व्यामोह हो जाता है, अपने के प्रति आग्रह हो जाता है। उस आग्रह के होने पर सत्यान्वेषण की दृष्टि नहीं रहती, बल्कि यह हो जाती है कि जो मेरा है वही सत्य है। क्या इस आग्रह और पक्षपात से कभी सत्य की उपलब्धि हो सकती है और क्या इससे वस्तुतत्त्व का सही प्रतिपादन हो सकता है? कभी नहीं। इसलिये जैन शासन में नय और प्रमाणों द्वारा अनेकान्त दृष्टि से पदार्थ का कथन किया गया है। संसार में जो कुछ कहा जाता है, वह पूर्ण सत्य नहीं होता, बल्कि सत्यांश होता है क्योंकि कोई शब्द सम्पूर्ण सत्य को कह नहीं सकता। शब्द जो कुछ कहता है, वह सत्यांश होता है और वह किसी अपेक्षा को लेकर ही कहता है। इस सापेक्षता को ही तो अनेकान्त कहते हैं। जैन शासन इसी अनेकान्त का कथन है। अतः वह पदार्थों का अनेक दृष्टियों से सही निरूपण कर सका है।

जैन शासन की तीसरी विशेषता यह है कि चूंकि उसमें सारा कथन अनेकान्त को लेकर है; दूसरे एकान्तवादी जैन शासन का खंडन नहीं कर सकते। वह अकाट्य है।

इन सब विशेषताओं के कारण जैन शासन ही आत्मा का कल्याण कर सकता है और संसार के जन्म-मरण, आधि-व्याधि आदि को नष्ट कर सकता है। इसीलिये जैसा कि हमने पहले कहा था कि वस्तुतः जिनशासन निज शासन है, आत्मा का धर्म है।

दिगम्बर मुद्रा की नैसर्गिकता

जल स्वभाव से शीतल होता है। यदि उसको अग्नि द्वारा गर्म किया जाए तो भी देर तक उसे यों ही छोड़ देने पर वह स्वयं शीतल हो जाता है। जिन स्रोतों से जल उष्ण (गर्म) निकलता है, उस जल की गर्मी भी स्वाभाविक नहीं होती। उस जल के नीचे गन्धक आदि ज्वलनशील पदार्थ की कोई खान होती है जिस कारण स्रोत का यह जल गर्म होता रहता है। किन्तु स्रोत से निकले हुए उस गर्म जल को भी यदि यों ही रख दिया जाए तो वह फिर अपनी स्वाभाविक शीतलता में आ जाता है। इससे सिद्ध होता है कि जल का स्वभाव शीतल है।

जीव का स्वभाव भी शीतल है। उसमें जब किसी प्रतिकूल अनिष्ट बात को देखकर, सुनकर या विचार करके भयानक गर्मी का आवेश आता है उस समय यह एकदम अपने वश में नहीं रहता। अपना विवेक, धैर्य, क्षमा, शान्ति खोकर मरने-मारने और ऊल-जलूल बकवास करने, गालियां, अपशब्द देने के लिये तैयार हो जाता है, उसके नेत्रों में रक्त उतर आता है, चेहरा लाल हो जाता है परन्तु जीव की वह गर्मी स्वाभाविक नहीं होती, क्रोध कषाय[1] के कारण बनावटी (वैभाविक) होती है। इसी कारण थोड़ी देर तक ही उस गर्मी का प्रभाव रहता है, तदनन्तर वह क्रोधी जीव स्वयं शीतल स्वभाव में आ जाता है। द्वेष भावना चाहे उसके हृदय में भले ही बनी रहे परन्तु क्रोध का आवेश अधिक देर तक नहीं ठहर सकता। यदि किसी मनुष्य में बहुत अधिक देर तक क्रोध बना रहे तो उस क्रोध की गर्मी से पागल हो जायेगा। यहाँ तक कि उसकी मृत्यु भी हो सकती है। इस से प्रमाणित होता है कि क्रोध जीव का स्वभाव नहीं है, विभाव है[2]—विकृत परिणाम है।

इसी तरह हिंसा करना जीव का स्वभाव नहीं है, विभाव है। इसीलिये कोई भी हिंसक, वह चाहे मनुष्य हो या पशु, सदा हिंसा नहीं कर सकता। उसे अपने बच्चों, स्त्री, मित्र आदि के मारने के क्रूर परिणाम स्वप्न में भी नहीं होते। उनकी रक्षा करने में वह सदा तत्पर रहता है। इसके सिवाय उसके सामने जब कोई दीन जीव आता है और अपने प्राणों की भिक्षा मांगता है तो उसके ऊपर उसको दया भी आ जाती है। उसकी हिंसा नहीं करता। यदि कोई व्यक्ति अहिंसा भाव से रहना चाहे तो वह जन्म भर रह सकता है। अहिंसा के कारण उसका आत्मा क्षुब्ध नहीं होता। सिंह हिंसक अवश्य होता है परन्तु सदा सबकी हिंसा न करता है, न कर सकता है। उधर हिरण, खरगोश को देखो वे अहिंसक प्राणी हैं। जन्म से लेकर मरण पर्यन्त अहिंसक बने रहते हैं। किसी भी प्राणी की हिंसा नहीं करते। इस अहिंसा के कारण उनमें न कोई विकार आता है, न उन्हें कोई कष्ट होता है। इससे सिद्ध होता है कि हिंसा करना जीव का स्वभाव नहीं है। अहिंसा भाव स्वभाव है।

---

१. आत्मा के भीतरी कलुष परिणाम को कषाय कहते हैं। यद्यपि क्रोध, मान, माया, लोभ—ये चार ही कषाय प्रसिद्ध हैं, पर इनके अतिरिक्त भी अनेक प्रकार की कषायों का निर्देश आगम में मिलता है।"—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-२, जिनेन्द्रवर्णी, पृ० ३३

२. "कर्मों के उदय से होने वाले जीव के रागादि विकारी भावों को विभाव कहते हैं।"—जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश, भाग-३ जिनेन्द्र वर्णी, पृ० ५६५

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पहनने ओढ़ने के विषय में विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि पशु-पक्षियों की अपेक्षा मनुष्य में बहुत-कुछ कृत्रिमता (बनावटीपन) आ गयी है। विभिन्न देश के रहने वाले स्त्री-पुरुषों के विभिन्न वेश हैं। किसी देश के स्त्री-पुरुष लम्बे कपड़े पहनते हैं, किसी देश के छोटे पहनते हैं, कोई ढीले कपड़े पहना करते हैं, कोई तंग वस्त्र पहनते हैं, कोई पेड़ों के पत्तों, छालों से शरीर को ढँकते हैं, कोई पक्षियों के परों से शरीर आच्छादन करते हैं, कोई चर्म के वस्त्र पहनते हैं, किसी देश में प्रायः ऊनी वस्त्र काम में लिये जाते हैं, कहीं पर ऊनी सूती दोनों तरह के वस्त्र पहने जाते हैं।

अन्य देशों की बात छोड़कर हम भारत के विभिन्न प्रान्तों का पहनावा देखें तो उसमें परस्पर बहुत अन्तर है। पंजाब, बंगाल, मद्रास, उत्तर प्रदेश, महाराष्ट्र प्रान्तों में स्त्री पुरुषों की वेशभूषा विभिन्न प्रकार की है : आसाम के नागा लोग तथा अनेक देशों के मूल निवासी बहुत थोड़ा-सा वस्त्र पहन कर प्रायः नग्न रहते हैं। इन सब बातों से यह बात ज्ञात होती है कि मनुष्य की वेशभूषा में बनावटी रूप आ गया है।

पशु-पक्षी सदा नग्न रहते हैं फिर न उनको शीत ऋतु में कफज्वर (निमोनिया) होता है, न वर्षाऋतु के अन्त में मलेरिया होता है और न ग्रीष्म ऋतु में उनका कभी गर्मी से पित्तज्वर होते सुना है। जंगलों में उनके लिये न कहीं अस्पताल खुले हैं, न समशीतोष्ण (एअरकण्डीशन के) भवन बने हुए हैं। फिर भी वे सदा स्वस्थ हृष्ट-पुष्ट रहते हैं। अपने लिये सुख-साधनों की व्यवस्था करने वाला, वस्त्रों से लदा हुआ, सभ्यता का पुजारी मनुष्य ही प्रत्येक ऋतु में विभिन्न रोगों से पीड़ित हुआ करता है और प्लेग, हैजा, राज्यक्ष्मा, मलेरिया आदि का शिकार होकर अकाल मृत्यु का शिकार होता रहता है।

मनुष्य के वस्त्र पहनने में दो कारण हैं—एक तो यह कि उसने अपनी शारीरिक सहनशक्ति को बिगाड़ लिया है। इसी कारण वह पशु-पक्षियों के समान अपने प्राकृतिक नग्नवेश में नहीं रह सकता। नग्न रहने पर सर्दी गर्मी लग जाने का उसे भय बना रहता है। दूसरे —मनुष्य के मन में उत्पन्न होने वाली कामवासना उसकी कामेन्द्रिय में विकार खड़ा कर देती है, अपनी उस ऐन्द्रिय निर्बलता को छिपाने के लिये अपने उन अंगों को वस्त्र से ढक कर गुप्त रखना पड़ता है जिससे उसके मानसिक विकार को अन्य व्यक्ति देख न सकें। उसे सभ्य सदाचारी जानते रहें।

कोई-कोई साधुवेशधारी कामविकार को रोकने के विचार से अपनी मूत्र इन्द्रिय रस्सी से कस कर बाँध देते हैं। कोई उसके साथ लोहे का टुकड़ा लटका देते हैं इत्यादि क्रिया कामवासना को रोकने के लिये करते हैं। संभवतः उन्हें मालूम नहीं कि कामवासना मन से उत्पन्न होती है। अतः इन्द्रिय के विकार को रोकने के लिये मन में अखण्ड ब्रह्मचर्य की भावना जाग्रत रहना आवश्यक है। मूत्रेन्द्रिय को बांधना आदि अकार्यकारी हैं।

मनुष्य यदि प्रकृति में रहन-सहन का अभ्यासी हो जाए तथा अपने मानसिक काम-विकार पर विजय प्राप्त कर ले, तो फिर उसे कोई भी वस्त्र पहनने की आवश्यकता नहीं है।

भगवान् ऋषभनाथ ने जब घर-परिवार से, संसार से, शरीर से तथा विषयभोगों से विरक्त होकर साधुदीक्षा ली, उस समय उन्होंने परिग्रह-त्याग की पूर्ति के लिए शरीर के सब वस्त्र उतार कर अपना नग्नवेश बनाया, क्योंकि वस्त्र लेने में द्रव्य खर्च करना पड़ता है जिससे फिर माया के चक्कर में आना पड़ता है। दूसरे शारीरिक मोह छोड़ने के लिये शरीर को नग्न रखकर प्राकृतिक सर्दी-गर्मी को सहन करने योग्य बनाया। तीसरे, अपने मानसिक ब्रह्मचर्य का प्रत्यक्ष प्रमाण संसार को कराने के लिये भी उन्होंने वस्त्र पहनना त्याग दिया। उसी नग्नवेश में तपस्या करके उन्होंने मुक्ति प्राप्त की। उनके उसी नग्नवेश को उनके अनुयायी साधुवर्ग ने परम्परा से अपनाया, पश्चात्वर्ती समस्त तीर्थंकर भी नग्न होकर ही साधु बने और अन्त तक नग्न रहे।

भगवान् महावीर के बाद सम्राट् चन्द्रगुप्त के समय द्वादशवर्षीय अकाल पड़ने के समय कुछ जैन साधुओं ने भोजनचर्या के समय लंगोट पहनना प्रारम्भ कर दिया था। उसके वे अभ्यासी बन गये, जिससे कि विक्रम संवत् की दूसरी शताब्दी में जैन श्रमण संघ दिगम्बर व श्वेताम्बर रूप में विभक्त हो गया। दिशाओं को ही अपना प्राकृतिक अम्बर (वस्त्र) समझकर पहले की तरह नग्न रहकर तपश्चरण करने वाले साधुओं का नाम दिगम्बर प्रख्यात हुआ और श्वेत (सफेद) अम्बर (कपड़े) पहनने वाले श्वेताम्बर कहलाये।

जैनेतर उच्चकोटि के साधुओं ने भी दिगम्बर रूप अपनाया है। उपनिषदों के कथनानुसार परमहंस साधु दिगम्बर ही होते हैं। शुकदेव जी नग्न रहते थे, शम्मस आदि कुछ मुसलमान फकीर भी नग्न रहा करते थे।

श्री अकलंक देव ने स्तुति करते हुए जिनेन्द्र भगवान् को विश्वपूज्य बतलाने में एक हेतु उनके नग्नरूप को बतलाया है। उन्होंने लिखा है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नो ब्रह्मांकितभूतलं न च हरेः शम्भोर्न मुद्रांकितम्,
नो चन्द्रार्ककरांकितं सुरपतेर्वज्रांकितं नैव च।
षड्वक्त्रांकितबौद्धदेवहुतभुक्यक्षोरगैर्नांकितं,
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितम् ॥

अर्थात् यह जगत् या इस जगत् के प्राणी ब्रह्मा के किसी चिह्न से अंकित नहीं हैं, विष्णु और शम्भु की मुहर भी किसी पर नहीं लगी है, न चन्द्र सूर्य की किरणें किसी पर लगी हुई हैं, इन्द्र के वज्र का निशान भी किसी पर नहीं बना हुआ है, न षण्मुख कार्तिकेय के चिह्न से या बुद्ध, अग्नि, यक्ष, नागराज के चिह्न से अंकित जगत् या जगत् के प्राणी हैं। हे वादी विद्वानों! देख लो यह समस्त जगत् जिनेन्द्र भगवान् की मुद्रा से अंकित नग्न दिखाई दे रहा है। प्रत्येक प्राणी भगवान् जिनेन्द्र देव की नग्न मुद्रा में उत्पन्न होता है।

आगे इसको स्पष्ट करते हुए लिखते हैं—

मौजीदण्डकमण्डलुप्रभृतयो नो लाञ्छनं ब्रह्मणो,
रुद्रस्यापि जटाकपालमुकुटं कौपीनखट्वांगना।
विष्णोश्चक्रगदादिशंखमतुलं बुद्धस्य रक्तांबरं,
नग्नं पश्यत वादिनो जगदिदं जैनेन्द्रमुद्रांकितम् ॥

अर्थात्—जैन दर्शन के विरुद्ध वाद करने वाले वादी पण्डित जन! ध्यान देकर देखो कि इस जगत् में किसी भी वस्तु पर या किसी भी जीव पर ब्रह्मा का चिह्न मौजी, दण्ड, कमण्डलु आदि कोई भी नहीं पाया जाता। महादेव का भी केशों की जटा, हाथ में लिया कपाल, चन्द्र-मुकुट, कौपीन, खाट, स्त्री (पार्वती) आदि का कोई चिह्न कहीं किसी पर अंकित नहीं दीख पड़ता। विष्णु के शंख, चक्र, गदा आदि के चिह्न भी किसी पर दिखाई नहीं देते। बुद्ध का लाल वस्त्र भी किसी पर अंकित नहीं है, किन्तु समस्त जगत् में समस्त जगत् के प्राणी जिनेन्द्र भगवान् की नग्न मुद्रा से अंकित पाये जाते हैं।

अपने-अपने देश, प्रदेश, प्रान्त का मान्य शासक वही माना जाता है जिसकी मुहर के सिक्के (रुपया, पैसा, गिन्नी, नोट आदि) चलते हैं, राजकीय व्यवहार के समस्त पदार्थों (टिकट, स्टाम्प आदि) पर जिसका चिह्न अंकित होता है। तदनुसार जगत् में ब्रह्मा, विष्णु, महेश, बुद्ध, इन्द्र, यक्ष आदि किसी भी देव की मुहर नहीं पाई जाती किन्तु जिनेन्द्र भगवान नग्न होते हैं, सो उनकी नग्नता की छाप संसार के सभी उत्पन्न होने वाले जीवों पर लगी होती है। अतः विश्व के पूज्य श्री जिनेन्द्र देव ही हैं।

जिनेन्द्र भगवान् की उस नग्न दिगम्बर मुद्रा को दीन, हीन, भीरु व्यक्ति धारण नहीं कर सकते। उसके लिये महान् मनोबल, अटूट साहस तथा अखण्ड ब्रह्मचर्य की आवश्यकता होती है। यदि इन बातों में कमी हो तो मनुष्य नग्न दिगम्बर मुद्रा धारण नहीं कर सकता। पशु ब्रह्मचर्य की कमी के कारण ही नग्न रहते हुए भी भगवान् जिनेन्द्र की नग्न दिगम्बर मुद्रा-धारक नहीं कहलाते। कवि ने कहा है—

अन्तर विषय-वासना बरतै बाहर लोकलाज भयकारी।
तातैं परम दिगम्बर-मुद्रा धरि सकैं नहीं दीन संसारी ॥

अर्थात्—सर्वसाधारण मनुष्यों का मन काम-वासना से भरा हुआ है, बाहर उन्हें नग्न होने के लिये लोकलज्जा बाधा डालती है। इस कारण वे अपनी निर्बलता के कारण दिगम्बर दीक्षा नहीं ले सकते।

इसके साथ ही मुनियों के अन्य २७ गुणों का भी आचरण होना आवश्यक है। पांच महाव्रत, पांच समिति, पांच इन्द्रिय-दमन, छह आवश्यक तथा दिन में केवल एक बार ही भोजन करना, पानी भी उबाला हुआ उसी समय पीना, पृथ्वी पर, पत्थर या लकड़ी के तख्ते पर सोना, अपने बालों का अपने हाथों से लोंच करना, जीवन भर स्नान न करना इत्यादि कठोर व्रत भी कड़ाई के साथ आचरण किये जाते हैं। तब ही श्री जिनेन्द्र भगवान् की दिगम्बर मुद्रा का धारण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org